स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः।

भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्माको आनन्द प्रदायक । सब धर्मोंका श्रेष्ठ रीतिसे पालन करते जीव निरन्तर ।
भक्ति अधोक्षजकी अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥ किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ॥

वर्ष १८ | गौराब्द ४८६, मास—माधव २५, वार—संकर्षण सोमवार, २९ माघ, सम्वत् २०२९, १२ फरवरी १९७३ | संख्या ९

फरवरी १९७३

श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तोत्राणि

श्रीश्रुतिगणकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

(श्रीमद्भागवत १०।८७।२१—२७)

श्रुतियोंने कहा—

दुरवगमात्मतत्त्वनिगमाय तवात्मतनोश्चरितमहामृताब्धिपरिवर्तपरिश्रमणाः ।
न परिलषन्ति केचिदपवर्गमपीश्वर ते चरणसरोजहंसकुलसंगविसृष्टगृहाः ॥२१॥

हे ईश्वर ! जीवोंको सहज ही न जानने योग्य आत्मतत्त्व बतलाने के लिए आपने अपनी विशुद्ध सत्त्वमयी मूर्त्ति प्रकटित की है। आपके लीला-चरित्र रूप महान् अमृत सागरमें जिन लोगोंने गोता लगाकर अपने संसार-दुःख जनित श्रान्तिको दूर किया है एवं आपके पादपद्ममें हंस की तरह विचरण करनेवाले भक्तोंके संगके कारण जिन व्यक्तियोंने गृहत्याग किया है, ऐसे महापुरुष मुक्तिपद की भी कामना नहीं करते ॥२१॥

त्वदनुपथं कुलायमिदमात्मसुहृत्प्रियवच्चरति तथोन्मुखे त्वयि हिते प्रिय आत्मनि च।
न बत रमन्त्यहो असदुपासनयात्महनो यदनुशया भ्रमन्त्युरुभये कुशरीरभृतः ॥२२॥

हे प्रभो ! आपके अनुगमनकारी एवं सेवाके उपयोगी यह विनश्वर देह आत्मा, सुहृत् एवं प्रियके समान स्वाधीन रूपसे आचरण कर रहा है। तथापि जो असत् उपासनामें आसक्त होकर नीच देह धारण कर महान् भयसे परिपूर्ण इस संसारमें भ्रमण करना पड़ता है, जीवगण देहादि परिपालनरूप उसी असत् उपासनामें ही प्रमत्त होकर निरन्तर कृपा करनेके लिए उत्सुक, प्रिय एवं हितकारी परमात्मारूपी आपका सख्य भाव आदिके द्वारा भजन नहीं करते ॥२२॥

निभृतमरुन्मनोऽदृढ़ योगयुजो हृदि यन्मुनय उपासते तदरयोऽपि ययुः स्मरणात् ।
स्त्रिय उरगेन्द्रभोगभुजदण्डविषक्तधियो वयमपि ते समाः समदृशोऽङ्घ्रिसरोजसुधाः ॥२३॥

हे प्रभो ! मुनि लोग प्राण, मन एवं इन्द्रियोंको संयमित कर दृढ़ योगयुक्त होकर हृदयमें जिस तत्त्वकी उपासना करते हैं, शत्रुओंने भी आपके स्मरणके कारण उक्त तत्त्व प्राप्त किया है। हे देव ! जो सभी स्त्रियाँ साँपके शरीर जैसे आपके भुजदण्ड युगलके प्रति लालसाके कारण मोहित दृष्टियुक्ता हैं वे एवं आपके पदकमल को भली प्रकारसे धारण करनेवालीं अपरिच्छिन्न (अनावृत) दृष्टिसम्पन्ना हम हैं—सभी ही आपके निकट समान कृपापात्री हैं ॥२३॥

क इह नु वेद बतावरजन्मलयोऽग्रसरं यत उदगादृषिर्यमनु देवगणा उभये ।
तर्हि न सन्न चासदुभयं न च कालजवः किमपि न तत्र शास्त्रमवकृष्य शयीत यदा ॥२४॥

हे भगवान ! जिनसे ब्रह्मा एवं उनके पश्चात् आध्यात्मिक एवं आदिदैविक देवता उत्पन्न हुए हैं उन पूर्वसिद्ध पुरुषोत्तम आपको इस जगतमें उत्पत्ति-विनाशशील पीछेसे वर्त्तमान कौनसा पुरुष जान सकता है ? आप जिस समय सभी बनाये पदार्थोंका संहार कर योगनिद्रा अवलम्बन करते हैं, उस समय आकाशादि स्थूल पदार्थ, महत्तत्त्व आदि सूक्ष्म पदार्थ एवं इन दोनोंद्वारा बनाया गया स्थूल शरीर, कालवेग, इन्द्रियप्राणादि ज्ञापक पदार्थ या शास्त्र—इन सभीका कुछ भी वर्तमान न रहनेके कारण जीवोंके लिये किसी प्रकारका ज्ञान-साधन नहीं रहता ॥२४॥

जनिमसतः सतो मृतिमृतात्मनि ये च भिदां विपणमृतं स्मरन्त्युपदिशन्ति त आरुपितैः ।
त्रिगुणमयः पुमानिति भिदा यदबोधकृता त्वयि न ततः परत्र स भवेदवबोधरसे ॥२५॥

हे देव ! वैशेषिक आदि मतावलम्बी व्यक्ति जगतकी उत्पत्ति स्वीकार करते हैं, पातंजलादि मतावलम्बी व्यक्ति असत्से ब्रह्मत्वकी उत्पत्ति बतलाते हैं, न्यायके माननेवाले व्यक्ति इक्कीस प्रकारके दुःखनाश को ही 'मुक्ति' कहा करते हैं, सांख्यवादी आत्मवस्तुमें भेद वर्णन करते हैं एवं मीमांसक लोग कर्मफल-व्यवहार अर्थात कर्मफलसे उत्पन्न स्वर्गादिकी

सत्यता एवं परम पुरुषार्थता अंगीकार करते हैं, परन्तु उनके पूर्वोक्त उपदेशसमूह भ्रमद्वारा ही उत्पन्न होते हैं, वस्तुतः या यथार्थमें तत्त्वदृष्टि द्वारा उत्पन्न नहीं हैं। पुरुष त्रिगुणमय होनेके कारण उसमें जो भेद वर्त्तमान है, वह अज्ञानका ही विलासमात्र है। अतएव ऐसे अज्ञानसे अतीत असंग चिद्घनस्वरूप आपमें ऐसा अज्ञानजनित भेद नहीं रह सकता ॥२५॥

सदिव मनस्त्रिवृत् त्वयि विभात्यसदा मरुजात् सदभिमृशन्त्यशेषमिदमात्मतयात्मविदः ।
नहि विकृतिं त्यजन्ति कनकस्य तदात्मतया स्वकृतमनुप्रविष्टमिदमात्मतयावसितम् ॥२६॥

त्रिगुणात्मक ये प्रपंचसमूह मनःकल्पित एवं असत्स्वरूप होकर भी आपमें अधिष्ठित रहकर मनुष्य पर्यन्त सभी जीवोंके निकट सत् की तरह प्रतीत हो रहे हैं। आत्म तत्त्वके जाननेवाले पण्डित लोग भोक्तृ-भोग्यस्वरूप इस निखिल विश्वको परमात्मरूप सद्वस्तुके कार्य होनेके कारण ही सद् रूपसे दर्शन करते हैं। परन्तु परमात्म सम्बन्धको छोड़कर इसकी पृथक् सत्ता नहीं जानते। कनकाभिलाषी व्यक्ति कुण्डलादि वस्तुओंका परित्याग नहीं करते, परन्तु वे भी कनकके ही कार्य होनेके कारण उन्हें भी ग्रहण कर लेते हैं। अतएव आपके द्वारा रचित यह विश्व एवं उसमें अनुप्रविष्ट जीवात्मा या पुरुष भी आपके स्वरूप ज्ञानमें ही निश्चित हुआ है ॥२६॥

तव परि ये चरन्त्यखिलसत्त्वनिकेततया त उत पदाक्रमन्त्यविगणय्य शिरो निर्ऋतेः ।
परिवयसे पशूनिव गिरा विबुधानपि तांस्त्वयि कृतसौहृदाः खलु पुनन्ति न ये विमुखाः ॥२७॥

जो व्यक्ति आपको समस्त जीवोंका अधिष्ठान जानकर आपकी सेवा कहते हैं, वे ही बिना किसी शंकाके मृत्युके मस्तक पर पद रखकर उसे अतिक्रम कर लेते हैं। जो व्यक्ति भक्तिशून्य हैं, वे पण्डित होने पर भी आप कर्ममार्गके स्वर्गादि फलश्रुति वचन-समूहद्वारा पशुओं की तरह उन्हें कर्मयोगमें ही आबद्ध करते हैं। जो व्यक्ति आपके प्रेमभावसे सम्पन्न हैं, वे ही अपनेको एवं दूसरेको पवित्र किया करते हैं। दूसरा कोई उसमें समर्थ नहीं होता ॥२७॥

(क्रमशः)

श्रीमन्महाप्रभुके आगमनका विशेष कारण

जो वस्तु पहले दिया नहीं गया, मानव लोग पहले जिसे जान नहीं सके, उसी भगवद्भक्तिकी सर्वोत्तमा शोभा सभी जीवोंको सम्यक् प्रकारसे प्रदान करनेके लिए श्रीमन्महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव आये थे। वे यदि कुछ विशेष बातें नहीं बतलाते, तो मनुष्य लोग परजगत्के सम्बन्धमें अनेक बातोंमें अज्ञ रहते। उन्होंने दया कर सभी व्यक्तियोंको वे बातें बतला दी हैं। पूर्व-पूर्व अवतारोंमें पारमार्थिक सत्य जिस प्रकार प्रकाशित हुआ था, उसे सभी मनुष्य साधारण रूपसे जानते थे। उन्होंने जो बातें बतलायी हैं, उन्हें मनुष्य नहीं जानते थे एवं जाननेकी आवश्यकता भी नहीं समझते थे। उनकी दयासे जाना जाता है कि मानव-जाति दरिद्र थी। उनकी प्रचुर दया है, किन्तु मनुष्योंमें अधिकांश व्यक्ति ही वे बातें नहीं ग्रहण कर सके। जो व्यक्ति ग्रहण करनेमें समर्थ हुए हैं, वे अत्यन्त लाभान्वित हुए हैं। उन्नत उज्ज्वल रसकी बात या सेवाकी सौन्दर्य-प्रदर्शनी उन्होंने जगतमें खोला है, जगतके बतलाया है। वह अभिनव कार्य है।

श्रीमन्महाप्रभु 'हरिः पुरटसुन्दरद्युति-कदम्बसन्दीपितः' हैं। वे 'हरि' हैं। भगवान् हरि जिस प्रकार शास्त्रादियोंमें वर्णन किये गये हैं, उस प्रकार वर्णित न होकर वे महाप्रभु सुवर्ण-वर्ण-कान्ति रूपसे सन्दीपित हुए हैं। कच्चे सोनेके रंगके आलोकसे संदीप्त हैं। उनके शरीरका रंग उस प्रकारका है। उन्होंने जगतके प्रत्येक व्यक्तिके हृदयमें ऐसा विषय प्रकाश किया है जो अपूर्व एवं अतुलनीय है। ऐसे जो श्रीशचीनन्दन हैं, वे जगतके समस्त व्यक्तियोंके हृदयमें स्फूर्त्ति प्राप्त हों।

वे हरि हैं। हरि पूर्ण पदार्थ हैं। श्रीकृष्णचैतन्यदेव वे ही हरि हैं। वे पूर्ण पदार्थ होकर भी साधारण उपदेशकोंकी तरह जगतमें अवतार लेकर अपनी सम्बन्धी बातें कहे हैं। आत्मधर्मके बारेमें उन्होंने कहा है। उन्होंने अनात्म-विषयकी बात या मनके द्वारा विचारकी बात नहीं कही है। वे अन्तर्यामी रूपसे सभीके हृदयमें अवस्थित हैं। वे जागतिक सत्-असत् विवेकमात्र नहीं हैं। प्रापंचिक अवस्थामें जितना देखा जाता है, उतना ही मात्र प्रकाशित करनेके लिए वे आये हैं—ऐसी बातें नहीं है। गुणजात जगतके बारेमें मनुष्य जितना समझे, उतना ही समझानेके लिए वे नहीं आये थे। उसको छोड़कर भी और भी सुन्दर बातें कहनेके लिए वे आये थे।

श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु अपनी शोभा या भगवद्भक्तिकी महिमा वर्णन करनेके लिए आये थे, जिसमें बारह प्रकारके रसोंकी बात है। पाँच स्थायी रस हैं। सात आगन्तुक रस हैं, जो कुछ कालके लिए आकर पूर्वोक्त पाँच मुख्य रसोंमें से एक एकको बढ़ाते हैं। उनमें बारह रस ही पूर्णमात्रामें अवस्थित हैं, जिन सभी रसोंके अस्थायी प्रतिफलित भाव जगतमें देखे जाते हैं। श्रीश्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजीकी लेखनीमें जिस बातका सन्धान नहीं है, उसी विशेषताकी बात श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुने जगतको बतलायी है, जो कृष्णमें

है, जो अन्य देवताओंमें पायी नहीं जाती। जीव-हृदयमें उसकी स्फूर्त्ति करानेके लिए अन्तरमें चैत्तगुरुरूपसे एवं बाहर महान्त गुरु रूपसे श्रीचैतन्य महाप्रभु विराजमान हैं। दूसरे अवतार-समूहमें वैसे प्रेमकी प्रचुरता या वैसी प्रीतिकी पूर्णता देखी नहीं जाती।

श्रीमन्महाप्रभुजीके पहले अढ़ाई प्रकारके रसकी चर्चा थी— शान्त, दास्य एवं सख्यका निम्नार्द्ध। मर्यादा, संभ्रम, भय लेकर यदि हम बन्धुके पास उपस्थित हों, तो वह बन्धुत्व मर्यादासूचक है। वे हमारे सम्मानित बन्धु हैं। श्रीगौरांग महाप्रभुने इसकी अपेक्षा भगवानके साथ निकटतम सम्बन्ध दिखलाया है, जिसे मनुष्य सहज ही समझ न हीं सकते।

अप्राकृत पुत्रत्व, कान्तत्व भगवानके सम्बन्धमें उन्होंने सर्वप्रथम दिखलाया है। पूर्व विचार-प्रणाली जो मनुष्योंमें प्रचलित थी, उसके लिए चेतन धर्ममें जो एक अधिकतर प्रसारता संभावना है, वह उन्होंने दिखलाया है। तुम मेरी जितनी सेवा कर सकते हो उससे मैं तुम्हारी अधिक सेवा कर सकता हूँ ऐसी सेवा-चेष्टा मनुष्य पहले नहीं जानता था। यह सुनकर मनुष्यको आश्चर्य होगा कि भगवानकी अपेक्षा भी भगवानके दास अधिक सेवा कर सकते हैं। सखा लोगोंने कृष्णके कन्धेमें चढ़कर ताल फल तोड़ा, उच्छिष्टके भी उच्छिष्टका थोड़ासा भाग—जो अच्छा लगता है, वह कृष्णके पास भेज देते हैं। वे यह नहीं मानते कि ये जगतके प्रभु हैं एवं वे क्षुद्र जीव हैं। वे अत्यन्त प्रेमके साथ सेवा करनेके लिए प्रवृत्त हुए हैं। यह कितना अधिकतर साहसपूर्ण विश्वास है! हम यदि उन्हें नहीं खिलायें, तो कौन उन्हें खिलावेगा?

पहले भगवानके सम्बन्धमें 'अज' विचार प्रबल था। वह एकेश्वरवाद नहीं है— एकेश्वरवादका लंघनकारी विचार है। ईश्वरको पिता-माता समझना उन्हें एक प्रकारसे नौकर करना है। पिता-माता प्रारम्भसे सेवा करनेमें लगे हुए हैं, जब हम उनकी सेवा नहीं कर सकते, जो सेवकका धर्म हमारे जीवनके प्रारम्भमें नहीं है। यह बात नित्य नहीं हुई। हम स्वयं अपनी ओरसे माता-पिताकी सेवा करेंगे, यह बात बहुत कुछ जागतिक अभिज्ञताके पश्चात् होती है। दूसरोंका व्यवहार देखकर क्रमशः उनके प्रति पूज्यभाव आरोप करते हैं। "भगवान सेवक हैं, हम भोगी हैं – हमारे दास भगवान हैं"— ऐसी दुर्बुद्धि हो जाती है, यदि हम भगवानको पिता-माता मानें।

मैं उन नन्दकी वन्दना करता हूँ, जिनके आंगनमें परंब्रह्म वस्तु लोटपोट कर रहे हैं। वे उनका पुत्रत्व स्वीकार कर पितृत्वरूप सेवा ग्रहण कर रहे हैं, उन्हें नमस्कार करता हूँ। और कुछ व्यक्ति श्रुति-शास्त्रकी बात कहते हैं—

(१) **न तस्य कार्यं करणञ्च विद्यते**
न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञान-बल-क्रिया च॥

(२) **अपाणिपादो जवनो ग्रहीता**
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति
वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्॥

इन श्लोकोंमें वर्णित विचार द्वारा वह-वस्तु खूब उन्नत सम्मानित हुई है। वेदशास्त्र

का विचार अनादि, अनन्त विचार है। "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म।" 'बृहत्वात् बृंहणत्वाद् ब्रह्म।' तुलना करने पर सर्वापेक्षा बृहत् हैं। ये श्रुति वाक्य हैं। श्रुतियाँ ऐसे क्यों कहती हैं?—क्योंकि जागतिक व्यक्ति भयभीत हैं। दूसरे-दूसरे व्यक्तियोंने स्मृति शास्त्रकी बहुत सी बातें कही हैं।

महाभारतादिमें श्रीकृष्णकी बात प्रचुर रूपसे कही गयी है। इस पृथिवीके प्रापंचिक वैभवको देखकर जो व्यक्ति वंचित एवं शंकित हो गये हैं—"कुंभीपाक नरकका कष्ट भोग करना होगा, मामलामें पड़ना होगा"—ऐसे भयसे भीत होकर जो तुम्हारा आश्रय ग्रहण करते हैं, वे लोग श्रुति, स्मृति, महाभारत अवलम्बन कर तुम्हारा भजन करें तो किया करें। मैं किन्तु वैसा भजन नहीं चाहता। मैं जड़से ही भगवानका भजन करना चाहता हूँ।

वह अज वस्तु मेरे घरमें जन्म लेगा, मैं तो जान नहीं पाता। उनके निकट मेरा जाना असंभव है। वे यदि मुझे जाननेका अवसर दें, तो उनका पिता बनकर उनकी सेवा करूँगा। जिनमें शक्ति नहीं है, मेरे निकट उतरकर आनेमें उनका अजत्व रहें तो रहे, उनके साथ मेरे सम्बन्धकी आवश्यकता है।

जिनमें एकेश्वरकी भक्ति या आत्माकी वृत्ति उन्मेषित नहीं हुई है, वे ये सब बातें समझ नहीं सकते। असीम अवस्थामें रहकर जो भगवान् इस जगतका अतिक्रम कर जिस जगतका व्यक्तित्व लेकर वर्त्तमान हैं, उन अज वस्तुके स्थानको वैकुण्ठ कहा जा सकता है। किन्तु श्रीचैतन्य महाप्रभुके दास श्रीरूप गोस्वामीपाद कहते हैं कि वैकुण्ठके भगवान्—जिनमें तृतीय मानका कोई कार्य आरोप नहीं किया जा सकता—जो अनादि, अनन्त हैं, वे जिस अप्राकृत भूमिकामें हैं, उसकी अपेक्षा मथुरा और थोड़ा उन्नत स्थान है, अज जहाँ जन्म ग्रहण किये थे। श्रीकृष्ण मथुरामें जन्म लेकर नन्दालयमें ले जाये गये थे। अजत्वमें सीमाबद्ध न रहकर अजत्वको अस्वीकार कर उन्होंने जन्म ग्रहण किया है। वह भूमिका केवल वैकुण्ठ नहीं है। उन मथुरासे वृन्दावनका उत्कर्ष है, जहाँ रासोत्सव हुआ था। वैकुण्ठ गोलोकके निम्नार्द्धमें अवस्थित है। गोलोकके ऊपरी आधे भागमें ये कुछ वस्तुएँ देखी जाती हैं। उसके ऊपर गोवर्द्धन-राधाकुण्ड है। यह अतीन्द्रिय राज्यकी अनिश्चित धारणा मात्र नहीं है। उसकी अपेक्षा उन्नत कार्य है।

वैकुण्ठके आधेको हम यहाँसे देख पाते हैं। हम जब नीचेमें हैं—संभ्रमके साथ जब उस वस्तुको देखते हैं, तब उनका आधा भाग हमारा दृष्टिगोचर होता है। दूसरा आधा हिस्सा हमारे निकट अदृश्य रहता है। नीचेसे नीचे वाला आधा भाग देख पाते हैं। हमारे वर्त्तमान नेत्रोंद्वारा चक्रवालके १८० डिग्री पाते हैं। आधा देखकर—नारायण दर्शन कर—विष्णु दर्शन कर—शान्त रसमें अवस्थित होते हैं। तब दास्यकी धारणाका उदय होता है। हमारे समझमें उस समय यह बात आती है कि कोटि कोटि भृत्यवर्ग उनकी सेवा करनेके लिए प्रस्तुत हैं। उस समय उनके बन्धुवर्गको देख पाते हैं—जो उनकी सेवा कर गौरव

अनुभव करते हैं। हम सख्यका आधा देखते हैं, विश्रम्भ सख्य देख नहीं पाते।

जिन्हें भगवद्वस्तुकी उपलब्धि है, उन्हें वैष्णव कहा जा सकता है। नीचे खड़े होकर अढ़ाई प्रकारके सम्बन्ध की उपलब्धि कर सकते हैं। किन्तु उस समय जहाँ अन्तरंग विश्वास है, वहाँ तक हम पहुँच नहीं सकते। नीचेके अढ़ाई रस—अवनत रस हैं। अवनत रसमें रहते समय उन्नत रसमें प्रवेश करनेका अधिकार नहीं होता।

श्रीगौरांग महाप्रभुका कहना है— तुम लोग अढ़ाई प्रकारके रस छोड़कर सम्बन्धका संकोच क्यों कर रहे हो? उन्होंने दूसरे अढ़ाई रसकी बात कही है। उन्नत एवं उज्ज्वल—ये दोनों बाल-कृष्णकी उपासनामें नहीं हैं। मधुर रसमें उज्ज्वलकी परमोन्नति है। वही रस श्रीचैतन्य महाप्रभुने जगतमें दिया है। काम, क्रोध, लोभ द्वारा कवलित जीव भी यह समझ पा रहा है कि ऐसा एक कार्य वास्तवमें है—मनकी गति जहाँ तक जाय केवल वहीं तक सब कुछ नहीं है। जगतमें उस वस्तुको देखनेकी कोई संभावना नहीं है। योग-साधन करने जाकर 'सेवा' नामक एक वृत्ति का उदय होता है। परमात्म-वस्तुके दर्शनके पश्चात् सेवा प्रारम्भ होती है। ब्रह्म-दर्शनके दूरत्वके कारण सेवा संभव नहीं होती। परस्पर आदान-प्रदान-सान्निध्य न होने पर सेवा नहीं होती। वियुक्त दर्शनमें वे खूब बृहत् हैं, किन्तु मेरा जो कार्य है—आत्माका जो कार्य है—उसकी सुविधा निकटतर दर्शन न होने पर नहीं होती।

केवल ज्ञानका आश्रय कर यदि वस्तुका निर्देश करें, तो बृहत्वको लक्ष्य करना हमारा धर्म हो उठता है, जिसमें सब कुछ अन्तर्भुक्त है। ज्ञानके द्वारा जब स्थानच्युत हैं, तब ऐसा दर्शन होता है।

जब विजातीय आवर्जनाको झाड़कर दूर कर सकते हैं, तब सन्निध्य प्राप्त कर सकते हैं। तब प्रसन्नताकी विच्युति या शोक नहीं होता। आकांक्षा अभावसे उत्पन्न है। समज्ञान-साम्यवादी धारणा मात्र नहीं है। सब वस्तुओंमें चेतन-धर्म दर्शन होना ही सम ज्ञान है। आवृत-दर्शनमें पूर्ण-प्रकाशका दर्शन नहीं होता। ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्—ये तीन संज्ञाएँ हम उस वस्तुके विषयमें प्राप्त करते हैं। भक्त 'भगवान्' कहते हैं, योगी 'परमात्मा' कहते हैं एवं ब्रह्मभूत ब्राह्मण 'ब्रह्म' कहते हैं। ज्ञानके साथ सन्धिनी शक्ति योगसे परमात्मा हैं। दूरमें स्थित विज्ञानसे रहित होकर वस्तुके साथ एक हो जाना आत्मा का धर्म नहीं है। जब हम विशुद्ध रूपसे उस वस्तुके निकट उपस्थित होते हैं, तब पहले हम ब्राह्मण होते हैं, पश्चात् योगी होते हैं, अन्तमें भक्त होते हैं। भगवत्ताका आंशिक दर्शन छोड़कर पूर्ण दर्शन होता है।

दूसरे देवताओंके मूल आकर-वस्तु विष्णु हैं। आचमन-मंत्रमें विष्णुका पारतम्य सूचित हुआ है—"ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततम्।"

विष्णुसे देवत्व है। सारा जगत उनके द्वारा पालित होता है। विष्णु सविशेष वस्तु हैं। सविशेषके सम्बन्धमें भगवत्ता-विचार उपस्थित होता है। भगवत्ताका थोड़ा थोड़ा अंश जो प्राप्त करते हैं, उन्हें 'भगवान' कहते हैं। किन्तु इसको छोड़कर दूसरा भाव अर्थात् भृत्य भाव जिनमें है, उन्हें देवदेव परमेश्वर

नहीं कहा जाता। सभी सूरि लोग विष्णुका परतमत्व दर्शन करते हैं। जो लोग सूरि हैं, वे अविद्वान् नहीं हैं। अविद्वत्-प्रतीतिके वश होकर विष्णुवस्तु का दूसरी वस्तुके साथ सम-ज्ञान होता है। 'आततं चक्षुः'—जिसके द्वारा प्रकाशमान राज्यमें सब वस्तु दखे जाते हैं।

विष्णुसे चौदह भुवन उत्पन्न हैं, स्थित हैं एवं लय-प्राप्त होते हैं। ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवका कार्य कालके भीतर प्रकाशित है। पुनः विष्णुवस्तुमें लीन, संगोपित हो जाता है। रजोगुणके अवतारको, तमोगुणके अवतारको हम ब्रह्मा एवं शिव दर्शन करते हैं। जन्म एवं भंग स्थितिके आगेकी एवं पश्चात्की अवस्थाएँ हैं। सृष्टिका विशिष्ट दर्शन जो व्यक्ति पाना चाहते हैं, वे विष्णुके तीन रूपका दर्शन करते हैं—गुणके द्वारा विभाग कर शक्ति दर्शन करते हैं। तीन प्रकार क्रिया अद्वय वस्तुका विभिन्न रूपसे क्रियाका दर्शन है। वे वैकुण्ठ वस्तु हैं। हमारे असम्पूर्ण यंत्र-समूहद्वारा उन्हें मापा नहीं जा सकता। हमारी इन्द्रियोंद्वारा ससीम देवताओंकी आराधना किया करते हैं। इन्द्र, उषा आदि विभिन्न खण्डित आंशिक-भावसमूह उसी अद्वय वस्तुके हैं। आलोकमय अंशको हम सूर्य कहते हैं—जो जलको खींच लेता है। इन्द्र उसी जलका वर्षण करते हैं, वायु संचालन करते हैं। ये एक एक भिन्न भाव पूर्ण और स्वतन्त्र वस्तु नहीं हैं। इस आंशिक दर्शनको सृष्टि करनेके लिए जो शक्ति है, वह विष्णुमाया है।

भूताकाश में वायु-देवताकी क्रिया हम हम भिन्न-भिन्न अवस्थानमें लक्ष्य करते हैं। देवता लोग खण्ड-दर्शनद्वारा विष्णुमें अवस्थित हैं। देवताओंकी उपासना इस दृष्टिमें विष्णुकी उपासना है। किन्तु शालग्राम लाकर उनकी प्राण-प्रतिष्ठा करनी पड़ती है। विष्णु पूर्ण वस्तु हैं। उनके ही अपूर्ण दर्शनमें भिन्न-भिन्न देवता-प्रतीति है। अतएव गीता (९ २३) में वर्णित है—

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्वितः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥

मनुष्यके कोणविशेषमें विष्णु देखे जानेपर विष्णुके आरोपित गुणमात्र देखे जाते हैं। अद्वयके एक खण्डित भावका अविधिपूर्वक यजन-कार्य होता है। तैंतीस कोटि देवताके पूजक अपूर्णके सेवक हैं। जिस प्रकार हाथीकी केवल पूँछ, या केवल एक पाँव देखकर हाथी सम्बन्धी ज्ञान असम्पूर्ण ज्ञान है, यह भी उसी प्रकार है। श्रीभगवानने कहा—मेरी आंशिक अनुभूति प्राप्त करनेके लिए जो व्यस्त हैं, उनका ऐसा दर्शन होता है। विष्णु-तत्त्व वर्णनमें मत्स्य-कूर्म आदि अवतार भी सम्मिलित हैं। विष्णुतत्व-वर्णनसे असम्मिलित उपास्यके उपासकोंको जिस प्रकार बुद्धके अनुगत व्यक्तियोंको वैष्णव या बौद्धवैष्णव कहा नहीं जा सकता। तपस्या यहाँसे आरम्भ हुआ है। तपस्वी व्यक्ति वैष्णवतासे दूर रह गये हैं। किन्तु वैष्णव उन्हें छोड़ नहीं सकते।

यदि कोई अपूर्ण होकर अपूर्णकी सेवा करे, तो उसकी विष्णुसेवा नहीं होती। असंगत रूपसे विष्णुके कल्पित खण्डित अंशकी सेवा होती है। अंशभूत विचार न कर विभिन्न कल्पना करना भ्रम है। विशेष कोणसे उत्पन्न दर्शन यथार्थ रूपमें मेरे ही

(विष्णुके ही) केवल एक गुण अवलोकनद्वारा अखण्ड वस्तुके दर्शन कल्पना करनेकी अवैध चेष्टा है। उस प्रकार दर्शक व्यक्ति भी मेरा ही (विष्णुका ही) भजन करते हैं। किन्तु वे मेरे एक तरफका भजन करते हैं। उनका दर्शन असम्यक् और अवैध है, उनके प्रवञ्चनापूर्ण चिन्तास्रोतमें जो उपस्थित हुआ, उसका दर्शन है। मेरे (भगवानके) निकट अपनेको सम्पूर्ण रूपसे निवेदन करना पड़ता है। मैं परिपूर्ण वस्तु हूँ। अनिवेदित दर्शककी आंशिक प्रतीति द्वारा कल्पना किया हुआ देवताविशेष मात्र नहीं हूँ।

यह हमारी इन्द्रियों द्वारा वस्तु मापनेकी वृत्ति है। माया द्वारा जब हम आवद्ध होते हैं, तब इस प्रकारके श्रवण, दर्शन इत्यादि का सामर्थ्य प्राप्त करते हैं। तब मनके द्वारा बाहरी जगतसे एक सूक्ष्म अनुभूति ग्रहण करने का सामर्थ्य उपस्थित होता है। वैकुण्ठ वस्तुको थोड़ा थोड़ा मापकर एक एक मतवाद स्थापन करते हैं। अक्षवाद, पतञ्जल आदिकी आरोह चिन्ताके इस प्रकार विभिन्न विचार हैं। इसमें पूर्णज्ञानके बदलेमें आवृत ज्ञान, आवृत आनन्द फल रूपसे उपस्थित होता है। यही जीवकी दुर्गति है।

भगवानने गीता (७।१४) में कहा है—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

अर्थात् माया मुझसे सम्बन्धित है। मैं मूल-आकर वस्तु हूँ। मेरी वंचनाकारिणी शक्ति अणु चित् जीवके ऊपर क्रिया करती है--पूर्ण चित् भगवानके ऊपर क्रिया नहीं कर सकती। वहाँ अपाश्रित (पीछेको ओर) एवं जुगुप्सित (घृणित) होकर अवस्थित है। यह मायाशक्ति दुष्पारा है। मायाग्रस्त व्यक्ति उसके संकीर्ण प्रकोष्ठ-विशेषके घेरेको छुड़ा नहीं सकता। उन्मुक्त अवकाशके विभिन्न अंश उसके निकट उन्मुक्त नहीं है। ढके जानेका कार्य मुझमें नहीं है। इस ढके पड़नेकी क्रियाको कोई उत्तीर्ण नहीं हो सकता क्योंकि माया खूब बड़ी वस्तु है। माप-लेनेके धर्मको त्यागकर वैकुण्ठ वस्तु श्रवण करनेका अधिकार सभीको नहीं मिलता, जब तक अधीनता स्वीकार करने की प्रवृत्ति न हो। अहंकारयुक्त अवस्थामें यह असंभव है।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

श्रीमत् गीता (४।३४) के इस श्लोकमें कहा गया है--प्रणिपात, परिप्रश्न और सेवा--ये तीनों एकके पश्चात् एक एक आवश्यक हैं। जो बात नहीं जानी गई, वही बात श्रवण करनी होगी। तृतीय मानकी बुद्धि रहते समय पञ्चमजुष मुरलीध्वनि सुननेका अधिकार नहीं होता। यह तुरीय मानका ऐश्वर्ययुक्त विष्णु-दर्शन मात्र नहीं है। पंचम मानमें चेतनके नित्य स्वभावसे यह अधिकार उस समय मिलता है, जब अहैतुकी संम्पूर्ण आत्मसमर्पण होता है, जब तृतीय मानके संग्रहीत सम्पत्तियों का सम्पूर्ण रूपसे परित्याग होता है, जब मैं तृतीय मानके विषयकी आलोचनामें नियुक्त नहीं होऊँगा, ऐसा दृढ़ निश्चय होता है। चतुर्थमानमें पहुंचते समय आत्मसमर्पण नामक एक बात आती है। भगवान् कहते हैं कि जो वस्तु जीवोंकी इन्द्रियोंद्वारा आलोचना करने योग्य है, उससे मैं सम्पूर्णरूपसे स्वतन्त्र रहता

हूँ, मैं कदापि उसके साथ एक श्रेणीभुक्त नहीं होता। तृतीय मानसे मैं बाहर हूँ, जब ऐसा विश्वास किसी व्यक्तिमें उपस्थित होता है, तब तुरीय मानमें जानेके लिए तृतीय मानके कार्यसे निवृत्त होनेकी इच्छा उपस्थित होती है।

तब वह अक्षज ज्ञानकी तरह और अपनी इन्द्रिय-परिचालना करनेमें प्रवृत्त नहीं होगा। यह कार्य माया उत्तीर्ण होनेकी पद्धति है। आत्मसमर्पण द्वारा माप-लेनेके धमसे उद्धार पाया जा सकता है। उसके पश्चात् कृष्णकथा श्रवण करने पर पञ्चम मानमें उपस्थित होते हैं। तब उन्नत उज्ज्वल रसका आस्वादन होता है, भगवानकी भोग्या स्त्रीत्व उपस्थित होता है। हरि उनके अपनी स्त्रीको भी अपने सौन्दर्य द्वारा हरण कर सकते हैं।

ये सभी नवीन विषय प्रचार कर श्रीचैतन्यमहाप्रभुने भागवत धर्म की दरिद्रता, असम्पूर्णता दूर कर भगवत्-सेवा धर्मको समृद्ध किया है। उन्नत उज्ज्वल भगवत्-सेवारस पहले जगतमें नहीं दिया गया था। श्रीराधागोविन्दकी लीलाकी बात उन्होंने ही जगतमें प्रकाश की है। ये सभी जागतिक कथाएँ हमें उनकी (भगवानकी) कथासे दूर निक्षेप कर सकती हैं। राधागोविन्दकी कथा परम कमनीय है। वह बात जीवोंको बतलाने के लिए एवं उसकेद्वारा उनके अविचारको नष्ट कर, सभी मलिनताएँ दूर कर देनेके लिए श्रीचैतन्यदेव एवं उनके आश्रित सेवक लोग सर्वदा प्रस्तुत हैं।

लेखक श्रील रूप गोस्वामीपाद कहते हैं कि समस्त जीवात्माएँ अविचार परित्याग कर श्रीकृष्णके निकट उपस्थित हों। वंशी जब बजती है, तब अविवाहित, परपुरुष-विवाहित आदि सभी श्रेणीकी गोपियाँ, जिन्होंने मधुर रसका कोई संवाद नहीं पाया है, वे सभी आकर पारकीयत्व सेवा प्राप्त करें। हड्डी-माँसके व्यभिचारकी बात नहीं जा रही है। कृष्णकी अपनी सेवाकी श्री—उनकी पाँच प्रकारकी सेवाकी बात इस मरणशील जीवके अमंगलका ध्वंस कर सकती है। श्रीचैतन्यदेवकी शिक्षा द्वारा सभी कृष्णकी प्रीति प्राप्त करें। वे रक्त-माँसके शरीरधारी प्रचारकमात्र नहीं हैं। श्रीचैतन्यदेव साक्षात् कृष्ण हैं। उनके सेवक लोगोंने अत्यन्त चमत्कारपूर्ण एव सूक्ष्मानुसूक्ष्म विचारद्वारा अत्यन्त सभी प्रकारसे ये सभी बातें समझा दी हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभुको उस प्रकार साधारण लोग आलोचना नहीं करते। उन्होंने कृष्णकथाको छोड़कर दूसरी बातें नहीं कही है। जिनका सौभाग्य होगा, वे उसे अवश्य ग्रहण करेंगे।

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

प्रश्नोत्तर

(सभ्यता और राजनीति)

१—"सभ्यता-शब्दका अर्थ है सभामें बैठनेकी योग्यता, वही सरल भद्रता है।"

—जै० ध० ९वाँ अ०

२—वर्त्तमान सभ्यताका क्या स्वरूप है?

"भीतरमें दुष्टताको छिपानेकी जो प्रथा है, उसीको वर्त्तमान समयमें सभ्यता समझते हैं। —जै० ध० ९वाँ अ०

३—धूर्त्त व्यक्ति किस प्रकार सभ्यताकी रक्षा करते हैं?"

"धूर्त्त व्यक्तियोंकी सभ्यताका गौरव केवल वृथा तर्क एवं देह-बलके द्वारा परिरक्षित होता है।" —जै० ध० ९वाँ अ०

४—कलिकालकी सभ्यता क्या पापाचार मात्र नहीं है?

"लोकरञ्जक वस्त्र पहननेसे ही यदि सभ्यता हो, तो वेश्याएँ तुम लोगोंसे अधिक सभ्य हैं। * * * मद्य, मांस स्वभावतः अपवित्र हैं। उन्हें भोजन कर जो सभ्यता होती है, वह केवल पापाचार मात्र है। आजकल जिस अवस्थाको सभ्यता कहते हैं, वह कलिकालकी ही सभ्यता है।"

—जै० ध० ९वाँ अ०

५—वर्त्तमान राज्यशासन हरिभजनके अनुकूल नहीं है क्या?

"हमारी वर्त्तमान अधीश्वरी श्रीमती महारानी विक्टोरिया स्वच्छन्द शरीरमें एवं निरुद्विग्न अन्तःकरणसे भारत राज्य करते रहें। उनके शासन-बलसे हम निरुद्विग्न होकर पवित्र वैष्णव-धर्मका आस्वादन एवं प्रचार करते रहें।" —'मंगलाचरण', स० तो ४।१

६—अंग्रेज एवं इस देशके व्यक्तियोंमें सौहार्द किस प्रकार रक्षित हो सकता है?

"अंग्रेज एवं बंगालियोंका परस्पर सौहार्द ही परम स्वाभाविक है। अंग्रेज व्यक्ति आर्य सन्तान हैं एवं भारतवासी भी आर्य-सन्तान हैं। अतएव अंग्रेज एवं भारतवासी सम्पर्कसे परस्परके भ्राता हैं। स्वाभाविक भ्रातृ-स्नेह कहाँ गया? अंग्रेज लोग हमारे शासन-कर्त्ता होनेके कारण स्वाभाविक वृत्ति किस लिए लुप्त हो? भारतवासी सम्पर्कसे ज्येष्ठ एवं अंग्रेज लोग कनिष्ठ हैं। कनिष्ठ भ्राता जब कार्य-क्षम होकर संसारका भार ग्रहण करे, तो ज्येष्ठ भ्राता वयसमें वृद्ध हैं। अतएव बलहीन होकर ज्येष्ठ विशेष प्रीतिके साथ कनिष्ठताकी अधीनता स्वीकार करते हैं। हम भी जब यौवनावस्थामें थे, तब हमने अन्यान्य सभी जातियोंके ऊपर प्रभुता की है। अभी वृद्धावस्थाके कारण अक्षम हैं, अतएव कनिष्ठ भ्राताके अधीन होकर जीवन-यात्रा निर्वाह करेंगे। इसकी अपेक्षा और क्या

सुखका विषय है ? कनिष्ठ भ्राताको आशीर्वाद देकर सब समय उस परमानन्दमय हरिचरणसुधाका पान करेंगे, इसकी अपेक्षा और क्या सौभाग्य है ? सभी प्रकारके उत्पातोंसे कनिष्ठ भ्राता हमारी रक्षा करेंगे। हमें और युद्ध-क्षेत्रका निरर्थक क्लेश स्वीकार न करना होगा। हम गृहमें रहकर हरिनाम करेंगे। कनिष्ठ भ्राता सांसारिक दुरुह कार्य करते-करते यदि किसी समय विरक्त होकर क्रोध भी प्रकाश करें, हम ज्येष्ठके धर्मानुसार उसे सहन कर कनिष्ठके प्रति मीठे वाक्य एवं शिष्टाचरण द्वारा उसका आनन्द-विधान कर भक्ति-भाजन होंगे। कनिष्ठ भ्राताका इन सभी दुरुह कार्यसम्बन्धमें अर्थाभाव होने पर सामर्थ्यके अनुसार अर्थकी सहायता करनेमें त्रुटि नहीं करेंगे। एकान्तवर्त्ती शिष्ट गृहस्थोंमें कनिष्ठ भ्राताके प्रति ज्येष्ठ भ्राताका जिस प्रकार स्नेहकार्य है, उसीका हम आचरण करेंगे। किसी प्रकारसे भी विरुद्ध भाव प्रकाव नहीं करेंगे। हे स्वदेशवासी भ्राताओं ! मैं उपदेश करता हूँ तुम लोग ऐसा आचरण करो।"

—'आशीर्वचन,' स० तो० २।५

७—देशवासी एवं विदेशी लोगोंमें परस्पर विरोध रहने पर मनुष्य-जीवनमें सुख-शान्ति की संभावना है क्या ?

"बहुगुणभूषित बलवीर्यशाली अंग्रेज व्यक्तियों एवं हमारे देशके भ्राताओंसे मैं कहता हूँ—"सभी भाईयों ! विरोध परित्याग करो। विरोधमें थोड़ा भी सुख नहीं है। विरोध परित्याग करने पर मेरी चिरपरिचिता शान्तिदेवी तुम लोगोंको सुख प्रदान करेंगी। सुख ही सभीका अन्वेषण करने योग्य है। शान्तिदेवीके आश्रयमें सुख प्राप्त करो। पहलेसे ही मनुष्य सभी ही सभीके भ्राता हैं। परम पिता परमेश्वर तुम्हारे परस्पर विरोधसे सन्तुष्ट नहीं होते। तुम सभी ही शरीरी हो। शरीर सम्बन्धी नाना प्रकारके अभाव पीड़ा एवं दुर्घटना द्वारा हम सर्वदा ही जर्जरित हैं। परस्पर भ्रातृभावसे रहने पर थोड़ा बहुत दुःखका नाश हो सकता है। परस्परकी सहायतासे अभाव-निवृत्ति और एकत्र परिश्रमसे सभी दैव-उत्पातोंका बहुत कुछ प्रशमन हो सकता है। ऐसी अवस्थामें यदि विरोध किया जाय, तो दुःखनिवृत्तिकी थोड़ी भी आशा और नहीं रहती। सुख इस नश्वर जगतको एक बारसे ही परित्याग करता है। अतएव हे भ्राताओं ! तुम लोग हिंसा, द्वेष एवं मिथ्या अहंकार परित्याग कर परस्पर प्रीति रखो।" —'आशीर्वचन', स० तो २।५

८—युद्धादिसे विरत होकर भी क्या भारतवासियोंके पूर्वगौरवकी रक्षा हो सकती है ?

"वृद्धावस्थाके कारण भारतवासियों द्वारा युद्धादि कार्यसे अवसर ग्रहण करने पर भी अवसर प्राप्त ज्येष्ठ भ्राताकी तरह अन्यान्य जातियोंके उपदेशक रूपसे सुखपूर्वक अवस्थान करें।" —चै० शि० २।३

९—धर्मशास्त्रमें कैसा युद्ध विहित हुआ है ?

"राज्य-वृद्धि करनेके लिए जितने भी प्रकारके अन्यायपूर्ण युद्ध होते हैं, वे सभी अधर्म एवं जगन्नाशक कार्य-विशेष हैं। नितान्त न्याय-युद्धको छोड़कर धर्मशास्त्र में दूसरे युद्ध विहित नहीं हुए हैं।" —चै० शि० २।५

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

सन्दर्भ–सार

(भक्तिसन्दर्भ–२५)

आयुर्हरति वै पुंसामुद्यन्नमस्तञ्च यन्नसौ ।
तस्यर्ते यत्क्षणो नीतः उत्तमःश्लोकवार्त्तया ॥
(भा २।३।१७)

ये सूर्यदेव प्रतिदिन उदित एवं अस्त होकर सभीकी आयुका हरण किया करते हैं। केवलमात्र जो उत्तमःश्लोक भगवानकी कथामें कालयापन करते हैं, उनकी आयुका ही वर्जन करते हैं इसकेद्वारा यही सूचित होता है कि एकबार मात्र भजनसे ही समस्त आयुका काल सार्थक होता है। केवल इतना ही नहीं, भक्त्याभास प्रभावसे भी अजा मिलादिका पापनाश होते देखा जाता है। जीवके समस्त कर्मादि विनाशपूर्वक उत्तमगति प्राप्ति–विषयमें भी भक्ति अत्यन्त अल्प परिश्रमसे ही समर्थ है, वह भी लघु–भागवतमें सुना जाता है—

वर्त्तमानञ्च यत्पापं यद्भूतं यद्भविष्यति ।
तत् सर्वं निर्दहत्याशु गोविन्दानलकीर्त्तनात् ॥

श्रीगोविन्दके कीर्त्तनरूप अग्निप्रभावसे भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान––सभी पाप ही नष्ट हो जाते हैं।

भक्तिका थोड़ा सामान्य सम्बन्ध ही कर्मगति विनाश कर परमगति प्रदान करनेमें समर्थ है, वह ब्रह्म–वैवर्त्त पुराणके इस वाक्यसे देखा जाता है—

स समाराधितो देवो
मुक्तिकृत् स्याद् यथा तथा ।
अनिच्छयापि हुतभुक्
संस्पृष्टो दहति द्विजाः ॥

हे द्विजगण ! जिस प्रकार अग्नि बिना इच्छाके स्पर्श करनेपर भी जलाती है, उसी प्रकार भगवान् जिस किसी प्रकारसे भी आराधित होनेपर मुक्ति प्रदान करते हैं।

स्कन्द–पुराणमें कहा गया है—

दीक्षामात्रेण कृष्णस्य नरा
मोक्षं लभन्ति वै ।
किं पुनर्ये सदा भक्त्या
पूजयन्त्यच्युतं नराः ॥

श्रीकृष्णके दीक्षाग्रहण मात्रसे ही मनुष्य मोक्ष प्राप्त करते हैं। तब जो सभी व्यक्ति सर्वदा अच्युतकी पूजा करते हैं, उनकी बात और क्या कही जाय ?

वृहन्नारदीय–पुराणमें भी कहा गया है—

अकामादपि ये विष्णोः
सकृत् पूजां प्रकुर्वते ।
न तेषां भवबन्धस्तु
कदाचिदपि जायते ॥

जो व्यक्ति बिना इच्छाके भी एकबार विष्णुपूजा करता है, उसका और कदापि संसार–बन्धन नहीं होता।

पाद्मे देवद्युति–स्तुतिमें––

सकृच्चारयेद् यस्तु नारायणमतन्द्रितः ।
शुद्धान्तःकरणो भूत्वा निर्वाणमधिगच्छति ॥

जो अप्रमत्त अर्थात् नामापराधरहित होकर एकबार मात्र भी नारायणका नाम उच्चारण करते हैं, उनकी चित्तशुद्धि होकर मोक्ष-प्राप्त होता है।

सम्पर्काद् यदि वा मोहाद्
यस्तु पूजयते हरिम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तः
प्रयाति परमं पदम्॥

पाद्मे अन्यत्र भी कहा गया है—जो सम्बन्धके कारण या मोहके कारण श्रीहरिकी पूजा करते हैं, वे समस्त पापोंसे विशेष रूपसे मुक्त होकर श्रीहरिका परम पद प्राप्त करते हैं।

इतिहास-समुच्चयमें श्रीनारद-पुण्डरीक संवादमें—

ये नृशंसा दुराचारा पापाचाररताः सदा।
ते यान्ति परमं धाम नारायण-पदाश्रया॥
लिप्यन्ते न च पापेन वैष्णवा वीतकल्मषाः।
पुनन्ति सकलान् लोकान् सहस्रांशुरिवोदितः॥
जन्मान्तर-सहस्रेषु यस्य स्यान्मतिरीदृशी।
दासोऽहं वासुदेवस्य सर्वान् लोकान् समुद्धरेत्॥
स याति विष्णुसालोक्यं पुरुषो नात्र संशयः।
किं पुनस्तद्गतप्राणाः पुरुषाः संयतेन्द्रियाः॥

जो व्यक्ति नृशंस, दुराचार, सर्वदा पापाचरणमें रत हैं, वे भी श्रीनारायणके पादपद्मका आश्रय करने पर परम धाम (वैकुण्ठ) प्राप्त करते हैं। समस्त पाप विगत होनेके कारण वे और पापकर्ममें लिप्त नहीं होते। वे गगनमें उदित सूर्यकी तरह सभी लोकोंको पवित्र करते हैं। सहस्र जन्ममें भी जिस व्यक्तिमें "मैं वासुदेवका दास हूँ" ऐसी सुमतिका उदय हो, वे समस्त लोगोंको उद्धार करते हैं। वे विष्णुसालोक्य प्राप्त करते हैं, इसमें कोई सन्देह ही नहीं है। और जो सभी जितेन्द्रिय महात्मा सर्वदा भगवानमें आसक्तचित्त हैं, उनकी तो कोई बात ही नहीं है।

रामायणमें श्रीरामचन्द्रकी उक्ति भी इस प्रकार है—

सकृदेव प्रपन्नो यस्तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वदा तस्मै ददाम्येतद् व्रतं मम॥

गारुड़में भी कहा गया है—

सकृदेव प्रपन्नो यस्तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वथा तस्मै ददात्येतद् व्रतं हरेः॥

"मैं तुम्हारे आश्रित हूँ"—यह कहकर जो एकबार मेरा आश्रय प्रार्थना करता है, मैं उसे सर्वदा अभय प्रदान करता हूँ, यही मेरा व्रत है।

जो एकबार आश्रय ग्रहण कर "मैं तुम्हारे आश्रित हूँ" यह बात कहता है, श्रीहरि उसे सर्वप्रकारसे अभय प्रदान करते हैं, यही उनका व्रत है।

श्रीमद्भागवत (१।१।१४) में देखा जाता है—

आपन्नः संसृतिं घोरां
यन्नाम विवशो गृणन्।
ततः सद्यो विमुच्येत
यद्बिभेति स्वयं भयम्॥

घोर संसार-दशा प्राप्त होकर असहाय अवस्थामें भी कोई उनके नाम का उच्चारण करे, तो तत्क्षणात् वह उससे मुक्त हो जाता है एवं जिनके नामसे साक्षात् भय (महाकाल) भी भीत होता है, आत्मशोधन चाहनेवाले सभी व्यक्तियोंके लिए उनके नाम-ग्रहण करना कर्त्तव्य है।

भा० ६।१६।४४ श्लोकमें—

न हि भगवन्नघटितमिदं
त्वद्दर्शनान्नृणामखिलपापक्षयः ।
यन्नाम सकृच्छ्रवणात् पुक्कशो-
ऽपि विमुच्यते संसारात् ॥

श्रीसंकर्षणके प्रति श्रीचित्रकेतु कह रहे हैं—हे भगवन् ! जिनके नाम एकबारमात्र उच्चारण करनेपर भी चण्डाल तक संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है, ऐसे आपके दर्शनके प्रभावसे मनुष्यके सभी पाप क्षय होंगे, यह असंभव नहीं है ।

अतएव विष्णुधर्मोत्तरमें भी कहा गया है—

जीवितं विष्णुभक्तस्य वरं पंचदिनानि च ।
न तु कल्पसहस्राणि भक्तिहीनस्य केशवे ॥

विष्णुभक्त मनुष्यका पाँच दिन जीवित रहना बल्कि श्रेयस्कर है, किन्तु विष्णुभक्तिहीन व्यक्ति हजारों कल्प जीवित रहनेपर भी कोई लाभ नहीं है ।

श्रीमद्भगावतके तीसरे स्कन्धमें कपिलदेवके कथनमें गर्भस्थ जीवकी भगवत्स्तुति एवं उसीका फिरसे संसार वर्णित है । इस विषयमें सिद्धान्त यही है—वहाँ भगवान्‌की स्तुति करनेवाला एवं संसारग्रस्त जीव एक नहीं हैं, किन्तु वे भिन्न भिन्न हैं । यहाँ जीवत्व-जातिके अनुसार दोनोंका ऐक्य होनेके कारण ऐसा कहा गया है । वस्तुतः गर्भ-दशामें कोई भाग्यवान जीव ही भगवत्स्तुति करनेमें समर्थ होते हैं, वे भगवान् की स्तुति फलसे संसारसे उत्तीर्ण हो जाते हैं । किन्तु उस समय सभीको भगवत्स्तुति नहीं आती । निरुक्तके अनुसार तीन प्रकारके जीव देखे जाते हैं । उसमेंसे एक प्रकार जीव पूर्वजन्मका स्मरण कर सकते हैं । दूसरे प्रकारके जीव सांख्ययोगादिका अभ्यास करते हैं । तीसरे प्रकारके जीव परम पुरुषका अनुशीलन करते हैं । अतएव उन शास्त्रकारों-का ही कहना है—

मृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः ।

जीव नौवें मासमें सर्वांगसम्पूर्ण होता है । उस समय वह कहता है—"मैं मरकर पुनः उत्पन्न हुआ हूँ एवं पुनः जन्म ग्रहण कर पर रहा हूँ । इस प्रकार उसकी चिन्ताकी बात कहकर—

अवाङ्मुखः पीड्यमानो जन्तुभिश्च समन्वितः ।
सांख्ययोगं समभ्यसेत् पुरुषं वा पंचविंशकम् ॥

वह जीव उस समय गर्भाशयमें निम्न मुखसे अवस्थित, पीड़ित एवं कृमि आदि जन्तुसमन्वित होकर सांख्य योगका अभ्यास अथवा पच्चीसवें तत्त्व-स्वरूप परम पुरुषका अनुशीलन करते हैं । अनन्तर दसवें मासमें जन्म लेते है ।

पंचविंशति-तत्त्व-स्वरूप पुरुषका अनुशीलन—इस वाक्यमें 'वा' इस विकल्प-वाचक शब्द द्वारा किसी एक जीवमात्रका ही भगवत्-ज्ञान जाना जाता है । यहाँ जिस प्रकार गर्भमें भगवत्स्तुतिकारी जीव एवं संसारदशाग्रस्त जीवका भेद होने पर भी इस प्रकार वर्णन देखा जा रहा है, उसी प्रकार अन्यत्र भी भेदस्थलसे अभेदतुल्य वर्णन देखा जाता है । यथा—तीसरे स्कन्धमें पाद्म-कल्प सृष्टि-वर्णन-प्रसंगमें श्रीसनकादिकी सृष्टि कही गई है । टीकाकारने भी यहाँ "ब्रह्मा कृत सृष्टिमात्रके वर्णनांशमें समानताके कारण ऐसा

एकत्व वर्णन" अर्थ लगाया है। श्रीवराहदेवके अवतारमें भी ऐसी समानता देखी जाती है। प्रथम मन्वन्तरके आदिमें पृथिवी जलमग्न होने पर श्रीवराहदेवने ब्रह्माकी नासिकासे प्रकट होकर पृथिवीका उद्धार करने जाकर हिरण्याक्षके साथ युद्ध किया, ऐसा वर्णन है। किन्तु हिरण्याक्ष मन्वन्तरके अवसानकालमें दक्षकन्या दितिसे उत्पन्न हुआ, ऐसा कहा गया है। अतएव दोनों मन्वन्तरोंमें श्रीवराहदेवका अवतार एवं पृथिवी-मज्जन रूप वृत्तान्तद्वय की समानता बोलनेकी इच्छा कर ही ऐसा वर्णन किया गया है। इसी प्रकार यहाँ भी जीव भगवानकी स्तुति कर रहे हैं एवं दूसरे जीव संसारदशाग्रस्त हो रहे हैं, ऐसा जानना होगा। यहाँ पहलेकी तरह परम गतिके विषयमें भक्तिकी परम्पराद्वारा कारणत्व देखा जाता है। अतएव बृहन्नारदीय—

यतीनां विष्णुभक्तानां परिचर्यापरायणैः।
ईक्षिता अपि गच्छन्ति पापिनोऽपि परां गतिम्॥

विष्णुभक्त यतियोंकी परिचर्यारत व्यक्तियोंद्वारा देखे जाने पर भी पापी व्यक्ति परम गति प्राप्त करते हैं।

कुलानां शतमागामि समतीतं तथा शतम्।
कारयन् भगवाद्धम नयत्यच्युतलोकताम्॥

ये भविष्यन्ति येऽतीता
आकल्पात् पुरुषाः कुले।
तांस्तारयन्ति संस्थाप्य
देवस्य प्रतिमां हरेः॥

विष्णुधर्ममें भी कहा गया है—

लोकमें श्रीहरिका मन्दिर प्रस्तुत कराकर अपने वंशके भविष्यत् शत पुरुष एवं अतीतके शत पुरुषकी विष्णुलोक-प्राप्तिका साधन बनाते हैं। जो श्रीहरिकी प्रतिमा स्थापन करते हैं, वे कल्पकालमें अपने वंशमें जो सभी व्यक्ति अतीत हुए हैं एवं भविष्यत्में होंगे, उनका उद्धार करते हैं।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

श्रीचैतन्य-शिक्षामृत

अष्टम वृष्टि (उपसंहार)

(गतांक, पृष्ठ ११८से आगे)

कल्पित सेश्वरनैतिक व्यक्ति उक्त मतकी सभी बात ही स्वीकार करते हुए केवल यही कहते हैं कि ईश्वरविश्वास भी एक प्रधान नीति है। जब तक ईश्वर पर विश्वास नहीं करे, तब तक नीति असम्पूर्ण रहती है। परमेश्वर विश्वास करनेसे कुछ नैतिक उपकार स्पष्ट प्रतीत होते हैं—

(१) नीतिबुद्धि प्रबल होने पर भी इन्द्रियोंका विषयाकर्षण समय समय पर बृहत् नीतिज्ञ व्यक्तियोंके लिए भी अधिक प्रबल हुआ करता है। यदि अलक्षित रूपसे इन्द्रियोंके विषय संयोगकी विशेष सुविधा होती है, तब ईश्वर विश्वास ही एकमात्र उसका उपयुक्त प्रतिबन्धक हो सकता है। कोई मनुष्य जिसे देखनेमें समर्थ नहीं है, परमेश्वर उसे देख पाते हैं, ऐसा जो समझते हैं, वे अत्यन्त गोपनमें भी नीतिविरुद्ध कार्य करनेमें समर्थ नहीं होंगे।

(२) ईश्वर विश्वास रहने पर मरण-समयमें विश्वास द्वारा उत्पन्न सुखसे बहुत कुछ कष्टका निवारण होता है।

(३) साधारणतः नीतिबुद्धिकी अपेक्षा ईश्वर विश्वास अधिकतर ऐहिक पुण्यप्रवृत्ति-जनक है, यह बात सभी ही स्वीकार करते हैं।

(४) ईश्वर विश्वासमें केवल नीतिज्ञ व्यक्तिके जीवनकी अपेक्षा अधिक शान्ति है।

(५) यदि ईश्वर हैं, तो उनके विश्वास द्वारा प्रचुर लाभ होगा। यदि न हों, तो भी विश्वास द्वारा कोई हानि नहीं होगी। पक्षान्तरमें यदि हों, तो अविश्वासी व्यक्तियों के लिए प्रचुर हानि है। अतएत गंभीर नीतिज्ञ व्यक्तियोंके लिए ईश्वर विश्वास नितान्त आवश्यक है।

(६) ईश्वर-विश्वासमें भी सुख है। वह सुख अन्यान्य सदोष सुखकी अपेक्षा निर्मल है। ईश्वरसुखसे उत्पात नहीं है, अन्य समस्त विषय सुखोंमें उत्पात है।

(७) ईश्वर-विश्वास द्वारा चित्तवृत्ति, सभीकी सत्पथगमन-प्रवृत्ति अन्यान्य नीति अपेक्षा अति शीघ्र पुष्ट होती है।

(८ ईश्वरविश्वास रहने पर दया और क्षमा अधिक बल प्राप्त होती हैं।

(९) ईश्वर विश्वास रहने पर निष्काम कर्ममें अधिक उत्साह होता है।

(१०) ईश्वर–विश्वास रहने पर परलोक-बुद्धि उदित होती है। परलोक बुद्धि उदित होने पर किसी भी घटना द्वारा निराश नहीं पड़ता। यदि ईश्वर नहीं भी हों, तथापि उपरोक्त हेतुके कारण एवं और एक कारणसे

एक ईश्वरको मानना ही उचित है। ये सभी प्रत्यक्ष फल देखकर निरीश्वर व्यक्ति कल्पित सेश्वरवादीके निकट पराजित होते हैं। अन्तमें कमटि (Comte) की तरह एक कल्पित उपासना तत्त्व स्वीकार कर लेते हैं। जैमिनीका कर्मकाण्ड, पातंजलका ईश्वर-प्रणिधान, कमटिकी कल्पित उपासना आदिमें यद्यपि कुछ कुछ विषयोंमें भेद है, तथापि ये सभी फलकी दृष्टिसे एक ही हैं। कमटिने अपना भाव प्रकाश कर कहा है। जैमिनि आदि कर्मवादी इसकी अपेक्षा अधिक सतर्क हैं, अतएव हृदय-भावको प्रकाश नहीं किया।

कल्पित सेश्वरवाद प्रबल होने पर वास्तव सेश्वरवाद तर्कयुद्धमें अग्रसर होता है। वास्तव सेश्वरवादी कहते हैं—भाई! ईश्वरको कल्पित तत्त्व मत समझो। वे यथार्थ ही वर्त्तमान हैं। नीचे लिखी हुई कुछ निगूढ़ युक्तियाँ अच्छी तरह विचार कर देखो—

(१) जगतके नियममें जिस प्रकारकी परिपाटी है, उसमें किसी विभु-चैतन्य द्वारा जो यह जगत रचित एवं व्यस्थापित हुआ है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। मानवकी युक्ति सबकी अपेक्षा श्रेष्ठवृत्ति है, उस उस वृत्तिको ठीक-ठीक व्यवहार करनेसे ही सत्यका आविष्कार हो जाता है। किसी स्थानमें सूक्ष्मता परित्याग करनेसे ही भ्रम उदित होता है। युक्तिके कार्यमें व्याप्तिकी विशेष आवश्यकता है, नहीं तो युक्ति बहुत दूर तक जानेमें समर्थ नहीं होती। जिन दो पक्षोंके लेकर साध्य विषय निर्णय किया जाय, वे दोनों पक्ष शुद्ध होना सर्वप्रथम आवश्यक है। जिस प्रकार धुआँ देखकर पर्वतमें आग लगनेका अनुमान होता है। इस स्थलमें जहाँ धुआँ हो, वहाँ आग रहती है, यह शुद्ध पक्ष होना आवश्यक है। दूसरा जो धुआँ देखा जा रहा है, वह यथार्थमें धुआँ होना चाहिए, कुहरा आदि न हो। दोनों पक्ष शुद्ध होने पर साध्य (जिस पर्वतमें आग है) अवश्य सत्य होगा। युक्तिगत अनुमानकी यह प्रधान प्रक्रिया है। जगतके कार्यमें जिस प्रकार सौन्दर्य और भली प्रकारका सन्निवेश देखा जाता है, उसे पहले रखकर दूसरे पक्षको ऐसा जाना कि घटनाक्रमसे जो-जो होता है, उसमें इतनी सुष्ठुता, नहीं रहती। ऐसी सुष्ठुमा केवल किसी विचारपूर्ण किसी चैतन्य द्वारा होती है। इन दोनों पक्ष द्वारा यह स्थिर करो कि किसी बृहत् चैतन्यद्वारा जगतकी रचना हुई है।

(२) कर्त्ताके बिना कोई कर्म नहीं होता। यदि कहो कि कर्त्ताका भी कर्त्ता है, तो सुयुक्ति यही है कि जड़ीय कर्त्तामात्रके लिए कर्त्ताकी आवश्यकता है। युक्तिशास्त्र द्वारा आकृति पहले कल्पित होती है, पश्चात् यह आकृति कार्यमें बदलनेसे ही एक जड़ीय क्रिया होती है। चैतन्यलक्षण वस्तु ही जड़का आदि कर्त्ता है। किन्तु इस बुद्धिके कर्त्ताको देखा नहीं जाता, इसलिए चैतन्यके कर्ताकी आवश्यकता होगी, यह बात तुम्हें कौन कहता है? जड़-दृष्टि कर तुम्हारा जो संस्कार हुआ है, उसके अन्यायरूपी व्याप्ति द्वारा तुम जो चैतन्यके कर्त्ताका अन्वेषण करते हो, ऐसे तुम्हारे कुसंस्कारका परित्याग कर विशुद्ध युक्ति द्वारा परमेश्वर पर विश्वास करो।

(३) यदि विशेष प्रक्रियासे परमाणु-संयोगद्वारा चैतन्यकी उत्पत्ति होती, तो उसकी

उत्पत्तिका एक एक उदाहरण किसी न किसी देशके इतिहासमें लिखा जाता। माताके गर्भमें मानवकी उत्पत्ति है। अन्य किसी उपायसे उसकी उत्पत्ति नहीं देखता। विज्ञान पुष्ट होकर भी कुछ हजार वर्षोंमें कुछ दिखा नहीं सका। यदि कहो कि घटनाद्वारा किसी समय मानव हुआ था, अभी माताके गर्भमें जन्म-रूप प्रथाका अवलम्बन किया है। उत्तर यही है कि ऐसा होने पर हली घटनाकी तरह दूसरी घटना देखी जाती। अभी भी दो एक स्वयम्भु उदित होते देखा जाता। अतएव पहले माता-पिताकी सृष्टि उस विभुचैतन्यको छोड़कर और किसी उपायसे युक्तिद्वारा सिद्ध नहीं होती।

(४) जहाँ मानव हैं, वहाँ ईश्वरविश्वास भी है। ईश्वरविश्वास मानव-प्रकृतिका सत्तानिष्ठ धर्म है। यदि कहो कि मूर्खताके कारण पहली अवस्थामें जाति-विषयमें ईश्वर-विश्वास रहता है, पश्चात् युक्तिद्वारा वह दूर होता है, तो उसका उत्तर यही है कि भ्रम सर्वत्र एक प्रकारका नहीं होता। सत्य ही सर्वत्र एक है। जैसे दसमें दस मिलाने पर बीस होगा। सभी स्थानमें ही इस मिलनका फल एक है, क्योंकि वह सत्य है। दसमें दस जोड़ने पर पच्चीस होगा, ऐसा मिथ्या फल सार्वत्रिक नहीं हो सकता। ईश्वर-विश्वास दूर द्वीप निवासियोंमें देखा गया है, उसमें कुसंस्कार शिक्षाद्वारा व्याप्त होनेका जो वाद है, वह यहाँ कहा नहीं जा सकता।

(५) मानव-जीवन यदि ऊँचे होनेकी वासना करें, तो ईश्वर एवं परलोक स्वीकार करना नितान्त आवश्यक है। जो जीवन कुछ दिनोंमें ही समाप्त हो, उसके सम्बन्धमें आशा-भरोसा कदापि दृढ़ नहीं होती। मानव-प्रकृतिमें ईश्वर विश्वास स्वभाव-सिद्ध धर्म होनेके कारण मनुष्यकी इतनी ऊँची आशा, भरोसा एवं दूरदृष्टि रहती है। ईश्वर-विश्वास रहित मानवप्रकृति सब प्रकारसे क्षुद्र आशययुक्त है।

(६) युक्ति द्वारा स्थापना किया गया वास्तव परमेश्वर विश्वास और उसके प्रति कृतज्ञता रूप धर्मालोचना न करने पर सभी नीतियोंके राजास्वरूप ईश-पूजाका अभाव हो पड़ता है। उससे जीवन असम्पूर्ण एवं मूल कर्त्तव्यके अभावके कारण पापिष्ठ होता है।

इन सभी युक्तियोंद्वारा सिद्धान्त कर तुम्हारे ज्ञानको समृद्ध करो एवं उसी ज्ञानके आश्रयमें विज्ञान, शिल्प, नीति और ईश्वर-विश्वास द्वारा अपने जीवनको उन्नत करो एवं जगतका मंगल करो। ऐसा होने पर ईश्वर तुम्हें परलोकमें सुख-शान्ति दान करेंगे। ईश्वरका परित्याग कर जो जो कार्य करोगे, उसके द्वारा तुम यथेष्ट पारलौकिक सुख प्राप्त नहीं कर सकोगे। देखो भाई! तुमने कल्पित ईश्वरके निकट कितनी आशा की थी, वास्तव ईश्वर तुम्हें उसकी अपेक्षा अनन्तगुण मंगल प्रदान करेंगे। विज्ञान, शिल्प, नीति और ईश्वरज्ञान अनुशीलन करना ही कर्त्तव्य है, किन्तु ये सभी अनुशीलन दो प्रकारके हैं—(१) अवैध अनुशीलन एवं (२) वैध अनुशीलन। अवैध अनुशीलन उसे कहते हैं जिसमें अधिकार विचारकी अपेक्षा न कर असमयमें एवं अयोग्य रूपसे ये सभी अनुशीलन होते हैं। जो व्यक्ति अनुशीलनके लिए जितना योग्य है, उसके लिए उतना ही अच्छा है। अधिक या अल्प होने पर सुफल

नहीं होगा। योग्यता स्वभाव अनुसारसे हो होता है। स्वभाव और प्राथमिक स्थिति, शिक्षा और संग द्वारा योग्यता उदित होती है। हे भाई! तुम स्वभाव विचार कर वर्णाश्रमरूप जो वैज्ञानिक धर्म भारतमें उत्पन्न हुआ था, उसका अवलम्बन करने पर तुम्हारे समस्त अधिकारके अनुसार कार्य और उत्कृष्ट फल सिद्ध होगा। और भी कहता हूँ तुम युक्ति द्वारा एवं अपनी सत्तागत विश्वास द्वारा अपनी आत्माको अमर जानो। ऐसा होने पर तुम्हारा शेष जीवन सर्वांगसुन्दर होगा। आत्माको माताके गर्भसे उत्पन्न समझते हो, किन्तु तुम्हारी दिव्य युक्तिद्वारा उसे और भी उन्नत भावद्वारा भूषित करो। इस जन्मके पूर्व तुम थे एवं जन्मके पश्चात् भी रहोगे, ऐसा सिद्धान्त न करने पर तुम्हारा ईश्वर-विश्वास पवित्र न होगा। तुम देखो, कोई व्यक्ति साधु स्वभावके व्यक्तिके घरमें जन्मग्रहण करनेके कारण उसके लिए साधुता ग्रहण सहज हुआ। कोई व्यक्ति असाधु गृहमें जन्म लेनेके कारण उसका असाधु स्वभाव होनेकी बहुत संभावना हुई। उनकी प्राप्य शिक्षा एवं संग उनके लिए अनुकूल एवं प्रतिकूल होने लगे। जब वे प्राप्तबुद्धि हुए, तब उनका स्वभाव स्थिर हो गया। उसके अनुसार कार्य कर एक जीवनमें ही यदि अनन्त फल पाता है, तो एक व्यक्ति अवश्य स्वर्ग एवं दूसरा व्यक्ति अवश्य नरक प्राप्त करेगा। यह क्या सर्वशक्तिमान् परम दयालु सर्वविचारसम्पन्न ईश्वरके लिए उपयुक्त है? जिन सभी क्षुद्र धर्मोंमें केवल एक जीवनगत कर्म ही स्वीकार किया गया है, वे सभी धर्म नितान्त असम्पूर्ण एवं अयुक्त हैं। तुम उसमें आबद्ध न रहकर जीवका उन्नत भाव स्वीकार करो एवं वर्णाश्रम धर्म अवलम्बन करो। तुम्हें यथार्थ सुख होगा। कर्म ही प्रधान कर्त्तव्य है। कर्म दो प्रकारका है—सकाम और निष्काम। सकाम कर्म केवल साक्षात् इन्द्रियपोषक है। उसमें तुम्हें रुचि होना उचित नहीं है। निष्काम कर्मका नाम कर्त्तव्य अनुष्ठान है। कर्त्तव्यानुष्ठानमें इन्द्रियसुख हो अथवा न हो, वह काम नहीं है, क्योंकि स्वार्थपरताको ही काम कहा जाता है। कर्त्तव्य उद्देश्यसे किये गये कर्ममें काम नहीं रहता। कर्त्तव्य अनुष्ठानसे हरितोषण संसिद्ध होता है। हरि सन्तुष्ट होने पर भी मुक्ति और मुक्ति दोनों मिलती हैं।

ऐसी युक्ति द्वारा वर्णाश्रम-धर्म संस्थापना कर सेश्वरनैतिक व्यक्ति जीवन-यात्रा निर्वाह करते हैं। जीवनका उद्देश्य उत्तमरूपसे निर्णय करनेके लिए उसमें यत्न उदित होता है। तब जीव और ईश्वरका यथार्थ सम्बन्ध क्या है, इसका विचार आरम्भ होता है। यह अवस्था ही सेश्वरनैतिक व्यक्तिका नरजीवन है। समस्त विषयका सिद्धान्त कर भी मेरे मूलतत्त्वका सिद्धान्त नहीं हुआ है, यह बात सोचते सोचते कुछ प्रश्नोंका उदय होता है—मैं कौन हूँ? जगतके साथ मेरा क्या सम्बन्ध है? ईश्वरके साथ मेरा सम्बन्ध क्या है एवं चरममें मेरी स्थिति कहाँ है?

इन संशयोंकी आलोचना करते करते तीन प्रकारकी संगतियाँ होती हैं, उनके नाम हैं—(१) स्वसुखप्रयोजन कर्म संगति (२) स्वार्थविनाशरूप निर्विशेष ज्ञानसंगति और (३) शुद्ध स्वधर्मालोचनरूप भक्तिसंगति।

पहली संगतिद्वारा सेश्वरनैतिक कहते हैं कि मैं क्षुद्र जीव हूँ, धर्माधर्म के वशीभूत हूँ, सर्वदा सुखाभिलाषी हूँ। जगतके साथ मेरा भोग्य-भोक्तृ सम्बन्ध है। मैं भोक्ता हूँ, जगत भोग्य है। जगतका कोई अंश निर्मल भोगका पीठस्वरूप है, वहाँ जाकर निर्मल सुख भोग करूँगा। ईश्वरके साथ मेरे ये सभी सम्बन्ध हैं—ईश्वर सृष्टा हैं, मैं सृष्ट हूँ। ईश्वर दाता हैं, मैं गृहीता हूँ। ईश्वर पाता हैं, मैं पालित हूँ। ईश्वर रक्षक हैं, मैं रक्षित हूँ। ईश्वर शक्तिमान हैं एवं मैं दुर्बल हूँ। ईश्वर लयकर्त्ता हैं, मैं नष्ट होने योग्य हूँ। ईश्वर विधाता हैं, मैं विधिके अधीन हूँ। ईश्वर विचारक हैं, मैं विचारित होनेका पात्र हूँ। ईश्वर प्रसन्न होने पर चरममें मेरी दुःखहानि और सुख प्राप्तिका योग्य स्थान प्राप्त होगा। अध्यात्म-योग भी कुछ अंशोंने इसी संगतिके अन्तर्गत है। अष्टांयोग प्राप्य अध्यात्मसमाधि इसीका उदाहरण है। क्योंकि यम, नियम, आसन, प्राणायाम, ध्यान धारणा—ये कर्मांग हैं। प्रत्याहार फल-लाभकी चेष्टा है। समाधि उसी दुःखहानि एवं सुखव्याप्तिरूप चरम लाभ है।

दूसरी संगति प्राप्त होकर सेश्वरनैतिक व्यक्ति कर्म त्यागपूर्वक निर्विशेष चिन्तारूढ़ होते हैं। तब वे कहते हैं कि मैं ज्ञानमय वस्तु हूँ, ब्रह्म भी ज्ञानमय हैं। मैं उनका अंशविशेष हूँ। जड़ समुदाय मेरी दुर्गति है। जड़के साक्षात् विपरीत पदार्थ ही ब्रह्म हैं। ब्रह्मस्वरूप मैंने केवल भ्रमके कारण जीव रूपी उपाधि प्राप्त की है। ब्रह्मके अतिरिक्त वस्तु नहीं है, तब जो जगत् देखा जा रहा है, वह मेरे अज्ञान द्वारा कल्पित है। मैं ब्रह्म हूँ, ऐसा निश्चय ज्ञान होने पर मुझे निर्वाणरूप लाभ होगा। निर्वाण ही मेरे जीवनका चरम उद्देश्य है।

तीसरी संगतिद्वारा सेश्वरनैतिक कहते हैं कि मैं वस्तुतः चित् हूँ, किन्तु मैं अणु चैतन्य हूँ एवं भगवान् बृहत् चैतन्य हैं। जड़ जगत् मिथ्या नहीं है। जड़ जगतमें मैंने जो मेरापन स्वीकार किया है, वही मेरी ज्ञान-दुर्बलता हैं। मैं नित्य भगवद्दास हूँ। जड़ जगतके साथ मेरा सम्बन्ध अनित्य है। वह सम्बन्ध भगवत्-इच्छासे ही संघरित हुआ है। मेरी भगवत् विमुखता जितने ही परिमाण क्षीण होगी, उतने ही परिमाणमें मेरा जड़-सम्बन्ध भी शिथिल होगा एवं चिद्-सम्बन्ध प्रबल होगा। मेरी सत्तामें जो भगवद्दास्य रूप एक नित्य वृत्ति है, उसी स्वधर्मका अनुशीलन करते करते अवान्तर फल स्वरूप जड़-मुक्ति होगी एवं नित्य फल स्वरूप प्रेम प्राप्त होगा। भगवानके साथ मेरा नित्य सेव्य-सेवक सम्बन्ध है।

पहली संगतिमें जो व्यक्ति आबद्ध हो जाते हैं, वे कर्मको ही प्रधान जानकर भगवानको कर्मांगके रूपमें निश्चय करते हैं। उनका फल भी नित्य लक्षणमें लक्षित होता। उनकी संगति निर्दोष नहीं है। उनके जीवनमें भगवान्की स्वाधीन-स्फूर्त्ति नहीं है। उन्हें कर्मी कहा जाता है।

द्वितीय संगतिमें जो आबद्ध हो जाते हैं, वे आत्मनाशको उद्देश्य कर फल्गु वैराग्य आचरण करते हैं, न तो उनकी इस जगतमें प्रतिष्ठा हुई और न पश्चात् कोई सिद्धतत्त्व ही मिला। कुछ व्यतिरेक चिन्ता लेकर उनका जीवन वृथा ही अतिवाहित होता है। इन्हें ज्ञानकाण्डी कहा जाता है।

पहली संगतिमें आबद्ध व्यक्ति तृतीय संगतिके अनुगत जीवनके सम्बन्धमें ऐसा पूर्वपक्ष किया करते हैं—भक्तिका आश्रय लेकर तुम इस जगतकी सभी वस्तुओं एवं वस्तुगत सुखोंको तुच्छ समझ रहे हो। हमारी आशाके स्थल जो स्वसुख प्राप्तिके लिए भोगपीठस्वरूप स्वर्गादि हैं, उसे भी तुम हेय कहकर प्रतिपादन कर रहे हो। तुम्हें जब सूक्ष्म ब्रह्मसे स्थावर तक इतना वैराग्य है, तब तुम जगतकी उन्नति चेष्टा नहीं करोगे एवं जगत्को विच्छिन्न कर डालोगे। यह जगत ही हमारा कर्म क्षेत्र है। यहाँ परमेश्वर-प्रिय कार्य साधन कर हम इस समय एवं पश्चात् कालमें सुख प्राप्त करे। तुम उन सभो का नाश कर सभीकी सुख-प्राप्तिमें बाधा प्रदान करोगे।

भक्त-जगतकी ओरसे इसका प्रत्युत्तर ऐसे सिद्धान्त द्वारा दिया जाता है—भाई! इस जगत्की उन्नतिमें यद्यपि जीवोंके लिए विशेष लाभ नहीं है, तथापि भक्त जीवन परीक्षा कर देखो, कि इस जगतका जो कुछ मंगल होगा, वह भक्तद्वारा होगा। तुम विज्ञान, शिल्प, कारीगरी, नीति जितनी उन्नति कर सकते हो, करो। उसमें हमारा तिल भर भी विरोध नहीं है। बल्कि उसके द्वारा भक्ति अनुशीलन में बहुत सुविधा ही होगी। हम वैरागी नहीं हैं। हम अनुरागी हैं। हमारा यही मात्र कहना है कि सभी कर्म ही भगवत्-सन्मुखता प्राप्त करें। सभी कर्मोंका गौण फल जो स्वार्थ-सुख है, उसके द्वारा सभी कम चालित न हो। भगवद्-भक्तिकी उन्नतिके लिए सभी कर्म किये जाय। कार्य सम्बन्धमें तुम्हारे एवं मेरे जीवनमें कोई भी भेद नहीं है। भेद यही है कि तुम कर्त्तव्य बुद्धिसे जो कार्य करोगे, मैं भगवद्दास्य भाव मिश्रित कर वह कार्य करूँगा। किसी समय मेरी विरक्ति द्वारा कर्म-चेष्टा खण्डित होती है। वह भी तुम्हारी किसी अवस्थामें कर्मसे विश्राम-प्राप्ति की तरह है। तुम निरर्थक विश्राम प्राप्त करोगे, मैं भगवद् भक्ति द्वारा कर्मसे अवसर प्राप्त करूँगा। जगत तुम्हारे लिए कर्म क्षेत्र है, मेरे लिए भक्ति साधन-क्षेत्र है। तुम्हारे द्वारा किये गये सभी कर्मोंको मैं बहिर्मुख कर्म जानता हूँ, क्योंकि तुम कर्म के लिए कर्म करते हो, भगवानके लिए कर्म नहीं। तुम्हारा नाम सेश्वरनैतिक या कर्मी है, मेरा नाम भक्त है।

(क्रमशः)

श्रीव्यास-पूजाका निमन्त्रण

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ
पो०—नवद्वीप (नदिया)
१४ फरवरी १९७३

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

व्यासकुल-श्रमणसङ्घाराध्य-वेदान्त विद्याश्रितेषु—

आगामी ८ फाल्गुन, २० फरवरी, मंगलवार, माघी कृष्णा तृतीयाको श्रीव्यासाभिन्न नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद परमहंसस्वामी **१०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी** आविर्भाव-तिथि और १० फाल्गुन, २२ फरवरी, बृहस्पतिवार माघी कृष्ण पंचमीको जगद्गुरु नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद **१०८ श्रीश्रीमद्भक्ति-सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी 'प्रभुपाद'** की आविर्भाव-विथि—इन दोनो तिथियों की पूजाके उपलक्ष्यमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके समस्त मठोंमें विशेषकर मूलमठ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीप, श्रीकेशवजी गौडीय मठ, मथुरा और श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुचुड़ामें आगामी ८ फाल्गुनसे १० फाल्गुन—तीन दिनों तक **श्रीश्रीव्यास-पूजा और तदङ्गीभूत पूजा-पंचक** अर्थात् श्रीकृष्ण-पंचक, व्यास-पंचक, मध्वादि आचार्य-पंचक, सनकादि-पंचक, श्रीगुरु-पंचक और तत्त्वपञ्चककी पूजा और होम आदि अनुष्ठित होंगे। प्रतिदिन हरिकीर्तन, भागवत-पाठ, भाषण, स्तवपाठ, श्री हरिगुरु-वैष्णव-संशन और अञ्जलि-प्रदान आदि इस महोत्सवके प्रधान और विशेष अङ्ग होंगे।

धर्म-प्राण सज्जन महोदयगण उक्त शुद्धभक्तिके अनुष्ठानमें बन्धु-बांधवोंके साथ योगदान करनेसे समितिके सदस्यवर्ग परमानन्दित और उत्साहित होंगे। इस महदनुष्ठान में योगदान करनेमें असमर्थ होनेपर प्राण, अर्थ, बुद्धि और वाक्य द्वारा समितिके सेवाकार्यके प्रति सहानुभूति प्रदर्शन करने पर भी भगवत् सेवोन्मुखी सुकृति अर्जित होगी।

वैयासक्यानुगत्याभिलाषी—
"सभ्यवृन्द"
श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

विशेष द्रष्टव्य—मंगलवार को श्रीव्यास-पंचकादि, श्रीलगुरुदेवके पादपद्मोंमें पुष्पांजलि, विभिन्न भाषाओंमें प्राप्त प्रबन्ध-पाठ, भाषण। बुधवारको श्रीगुरुतत्वके सम्बन्धमें प्रवचन। बृहस्पतिवारको श्रील प्रभुपादके श्रीपादपद्मोंमें अञ्जलि-प्रदान, प्रबन्धादि पाठ एवं श्रीमद्भागवतसे श्रीव्यासदेवके सम्बन्धमें आलोचना।

* श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः *

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति **श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ**

तेघरिपाड़ा, पो०—नवद्वीप,

सादर सम्भाषणपूर्वक निवेदन— (नदिया)

कलियुग-पावनावतारी स्वयं भगवान् **श्रीश्रीशचीनन्दन गौरहरि** की निखिल भुवन-मङ्गलमयी **आविर्भाव-तिथि-पूसा** (फाल्गुनी पूर्णिमा) के उपलक्ष्यमें **श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति** के उद्योगसे उपरोक्त ठिकानेपर आगामी २९ फाल्गुन, १३ मार्च मंगलवार से ५ चैत्र, १९ मार्च, सोमवार पर्यन्त सप्ताहकालव्यापी एक **विराट् महोसव** का अनुष्ठान होगा। इस महदनुष्ठानमें प्रतिदिन प्रवचन, कीर्त्तन, वक्तृता, इष्ट-गोष्ठी, श्रीविग्रह-सेवा, **महाप्रसाद वितरण** प्रभृति विविध भक्त्यङ्ग याजित होंगे।

इस उपलक्ष्यमें श्रीश्रीनवद्वीपधामके अन्तर्गत नौ द्वीपोंका दर्शन तथा तत्तत्स्थान-माहात्म्य-कीर्त्तन करते हुए **सोलह-कोसकी परिक्रमा** होगी। गत वर्षकी तरह इस वर्ष भी प्रतिदिन प्रातःकाल श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठसे यात्रा कर संध्याको पुनः वहाँ पर लौट आने की सुव्यवस्था की गई है।

धर्मप्राण सज्जन-वृन्द उक्त भक्ति-अनुष्ठानमें सबान्धव योगदान कर समितिके सदस्यवर्गको परमानन्दित एवं उत्साहित करेंगे। इस महदनुष्ठानका गुरुत्व उपलब्धि कर प्राण, अर्थ, बुद्धि और वाक्य द्वारा समितिके सेवाकार्यमें सहानुभूति प्रदर्शन कर अनुगृहीत करेंगे। १४ फरवरी १९७३।

शुद्धभक्त कृपालेश-प्रार्थी—

"सभ्यवृन्द"

श्रीगौड़ीय वेदान्त समित

द्रष्टव्य—विशेष विवरण के लिए अथवा साहाय्य (दानादि) देनेके लिये त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराजके निकट उपर्युक्त ठिकाने पर लिखें या भेजें।